मैसर्स सुर्यालक्ष्मी कॉटन मिल्स लिमिटेड

बनाम

मैसर्स राजवीर इंडस्ट्रीज लिमिटेड एवं अन्य

(फौजदारी अपील संख्या 62/2008)

जनवरी 9, 2008

[एस.बी सिन्हा एवं हरजीत सिंह बेदी, जेजे.]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - एस.एस. 482 और 154 - उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियाँ - एफआईऔर का दायरा - आईपीसी की धारा 406, 420 और 463 के तहत अपराध करने का आरोप लगाने वाली एफआईऔर रद्द करना - उच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दी गई - की शुद्धता - माना गया: हालांकि धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पास मौजूद शक्ति व्यापक है, लेकिन इसका प्रयोग करते समय बहुत अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता है - जहां एफआईऔर प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का खुलासा करती है, वहां उच्च न्यायालय को अनुसंधान में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए - तथ्यों के आधार पर, पुलिस द्वारा अनुसंधान शुरू होने से पहले ही एफआईऔर को रद्द कर दिया गया था- प्रथम दृष्टया आरोपी के खिलाफ धारा 406 के तहत कार्रवाई की जाने के पर्याप्त आधार है - इस प्रकार, अनुसंधान धारा 406, 420 और 463 दंड संहिता, 1860 के तहत आरोप तक सीमित है।

अपीलकर्ता-कंपनी की दो इकाइयाँ थीं। 2000-2004 की अवधि के दौरान, अपीलकर्ता कंपनी के प्रबंध निदेशक ने प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के साथ विधिवत हस्ताक्षरित खाली चैक व्यावसायिक उद्देश्य के लिये छोड़े। इसके बाद, व्यवस्था के तहत, इकाइयों को अलग कर दिया गया, स्थानांतरित कर दिया गया और प्रतिवादी संख्या 1 में निहित कर दिया गया। वर्ष 2005 में पार्टियों के बीच विवाद हो गया। अपीलकर्ता-कंपनी के प्रबंध निदेशक ने प्रतिवादी संख्या 2 और 3 को अप्रयुक्त खाली चैक वापस करने के लिए, अनुरोध किया लेकिन वे वापस नहीं किए गए थे। इसके बाद निदेशक ने प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के खिलाफ पुलिस में शिकायत दर्ज कराई। उक्त चैक का दुरुपयोग करने की साजिश का आरोप लगाया, लेकिन शिकायत दर्ज नहीं की गई। इसके बाद, डिमर्जर के पश्चात अपीलकर्ता कंपनी और प्रतिवादी संख्या 1 के बीच शेयर हस्तांतरण राशि के अंतर के लिए प्रतिवादी ने एक पत्र और टेलीग्राम जारी किया। अपीलकर्ता द्वारा पहले प्रतिवादी के पक्ष में 6.28 करोड़ रुपये का चैक ड्राॅ किया गया, जिसे वसूली के लिए जमा किया गया था। अपीलकर्ता ने आईपीसी की धारा 406, 420 और 463 के तहत एक और शिकायत दर्ज की लेकिन इसे दर्ज नहीं किया गया। इसके बाद अपीलकर्ता ने अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत याचिका दायर की और निर्देश दिए जाने पर पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी ने प्राथमिकी दर्ज की। हालाँकि, पहले प्रतिवादी ने चैक के अनादरण के लिए अपीलकर्ता को नोटिस जारी किया। इसके बाद, उत्तरदाताओं ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक आवेदन

उक्त एफआईऔर को रद्द करने हेतु, दायर किया। इसके बाद, प्रतिवादी सं. 1 ने अपीलकर्ता कंपनी और उसके अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक के खिलाफ परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 और 141 के तहत शिकायत याचिका दायर की।हाईकोर्ट ने एफआईऔर रद्द कर दी, इसलिए वर्तमान अपील की गई।

न्यायालय द्वारा अपील को आंशिक रूप से अभिनिर्धारित किया गया:-

1.1 सीआर. पी.सी. की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के पैरामीटर अब अच्छी तरह से व्यवस्थित हो गए हैं। यद्यपि यह व्यापक आयाम का है, फिर भी इसके अभ्यास में काफी सावधानी बरतनी पड़ती है। इस मामले में शामिल प्रसिद्ध कानूनी सिद्धांतों को लागू करने की आवश्यकता है। [पैरा 16] [442-बी सी]

हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 सप्प (1) एससीसी 335; *जनता दल बनाम एच.एस. चौधरी एवं अन्य* 1992 (4) एससीसी 305; *रूपन देओल बजाज (श्रीमती) और अन्य बनाम कंवर पाल सिंह गिल और अन्य* 1995 (6) एससीसी 194; *इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड और अन्य* दायर किया। *ऑल कार्गो मूवर्स(I) प्राईवेट लिमिटेड और अन्य बनाम धनेश बदरमल जैन और अन्य* 2007 (12) स्केल 391 पर विश्वास जताया गया।

1.2 आम तौर पर, किसी अभियुक्त का बचाव; यद्यपि प्रशंसनीय प्रतीत होता हो, लेकिन उक्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए उस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। फिर भी, उस स्तर पर उच्च न्यायालय आम तौर पर तथ्य के विवादित प्रश्न में प्रवेश नहीं करेगा। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि बेदाग चरित्र के दस्तावेजों पर यह पता लगाने के लिए किसी भी कीमत पर विचार नहीं किया जाना चाहिए कि क्या आपराधिक कार्यवाही जारी रखना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या शिकायत याचिका केवल आरोपी को परेशान करने के आरोप में मामला दर्ज किया गया है। हालाँकि बड़ी संख्या में विवादों का निर्धारण आमतौर पर केवल सिविल अदालतों द्वारा किया जाना चाहिए, लेकिन आपराधिक मामले केवल अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दायर किए जाते हैं, अर्थात् आरोपी को शिकायतकर्ता को देय राशि का तुरंत भुगतान करने के लिए मजबूर करना। एक ओर, न्यायालयों को ऐसी प्रथा को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए; लेकिन, दूसरी ओर, उस कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर भी नहीं जा सकता जो अन्यथा वास्तविक है। न्यायालय इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं कर सकते कि कुछ मामलों में, सिविल कार्यवाही और आपराधिक कार्यवाही दोनों ही चलने योग्य होंगी। [पैरा 18] [444-एफ, जी; 445-ए, बी]

2.1 वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने पक्षों के बीच विवाद की पृष्ठभूमि सहित विभिन्न तथ्यों पर गौर किया। यह इस आधार पर आगे

बढ़ा कि डिमर्जर योजना के मद्देनजर, अप्रयुक्त ब्लैंक चैक वापस पाने के लिए लंबे समय तक चुप रहने का अपीलकर्ता का आचरण कहानी बताता है। इसमें यह प्रश्न शामिल है कि क्या शिकायत याचिका केवल उत्तरदाताओं को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के लिए उपलब्ध उपायों का सहारा लेने के लिए या शिकायत याचिका दायर करने के उद्देश्य से दायर की गई थी। प्रभाव और सार को केवल बचाव के माध्यम से बढ़ाने की अनुमति दी जानी चाहिए। जैसा कि इस प्रकरण में हुआ है, आपराधिक कार्यवाहियां परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 139 के संदर्भ में उपधारणा के आधार पर निर्धारित नहीं की जानी चाहिए, जो कि एक खंडन योग्य कार्यवाही है। [पैरा 19] [445-बी, सी, डी, ई]

2.2 उच्च न्यायालय को इस पर आगे विचार करना चाहिए था इस तथ्य पर विचार करते हुए कि यदि आपराधिक मामले में अपीलकर्ता का बचाव स्वीकार कर लिया जाता है, तो उत्तरदाताओं पर फिर से मुकदमा चलाने का कोई उपचार नहीं होगा। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि व्यावसायिक आवश्यकताएं किसी व्यक्ति को खाली चैक जारी करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं। उपरोक्त स्थिति में यह पता लगाने का प्रयास किया जाना चाहिए कि; क्या शिकायत याचिका, को यदि पूरी तरह से अवलोकन मात्र से भी सही माना जावे तो क्या धारा 420, 406 व 463 आईपीसी के तहत अपराध बनता है। [पैरा 20] [445-ई, एफ, जी; 446-ए]

3.1 धारा 420 आईपीसी सपठित धारा 415 के अवलोकन से स्पष्ट है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचेगी कि अभियुक्त की ओर से धोखाधड़ी या बेईमानी का प्रलोभन शुरुआत में होना चाहिए, न कि बाद के चरण में। मौजूदा मामले में, 2000-2004 की अवधि के दौरान व्यावसायिक उद्देश्यों के उपयोग करने के लिए आरोपियों को खाली चैक सौंपे गए थे, लेकिन पार्टियों के बीच विवाद उसके काफी समय बाद यानि 2005 में उत्पन्न हुआ। इसलिए, धारा 420 आईपीसी के तहत प्रतिवादी के खिलाफ कार्यवाही करने का कोई मामला नहीं बनता है। [पैरा संख्या 21 व 22] [446-डी, ई; 447-सी]

बी. सुरेश यादव बनाम शरिफा बी 2007 (12) स्केल 364 को संदर्भित किया गया।

3.2 चैक में रिक्त स्थान स्वयं भरना जालसाजी नहीं माना जाएगा। जबकि शिकायत याचिका में आरोप लगाया गया था कि यह प्रतिवादी नंबर 2 और 3 थे जिन्होंने उक्त अपराध करने की साजिश रची थी, जबकि जवाबी हलफनामे में यह आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी कंपनी के कर्मचारियों ने ऐसा किया था। हालाँकि, संहिता की धारा 120बी जोड़ी गई है, लेकिन ऐसा कोई कथन नहीं किया कि प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने अपने कर्मचारियों के साथ कोई साजिश रची हो। इस प्रकार, उत्तरदाताओं के खिलाफ जालसाजी के अपराध में आगामी कार्यवाही का कोई मामला नहीं बनाया गया है। [पैरा 23] [447-डी, ई, एफ]

3.3 एक चैक जो कि एक संपत्ति है, इसे उत्तरदाताओं को सौंपा गया था। यदि उक्त संपत्ति का दुरुपयोग किया गया है या उस उद्देश्य के लिए उपयोग किया गया है जिसके लिए उसे सौंपा नहीं गया है, तो धारा 406 के तहत मामला बनाया जा सकता है। यहां तक कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत एक कार्यवाही में, अपीलकर्ता यह बचाव कर सकता है कि चैक का उपयोग किसी वैध दायित्व या ऋण के निर्वहन के लिए नहीं किया जाना था, लेकिन इसका मतलब यह नहीं होगा कि किसी उपयुक्त से मामले में शिकायत याचिका दायर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। इस प्रकार, उत्तरदाताओं के खिलाफ धारा 406 के तहत कार्यवाही करने का मामला बनाया गया है। [पैरा 24] [447-एफ, जी, एच; 448-ए]

3.4 उत्तरदाता मामले पर नजर रख रहे थे। जैसे ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज हुई, तुरंत नोटिस भेजा गया। एफआईऔर दर्ज होने के कुछ दिनों के भीतर रद्दीकरण आवेदन दायर किया गया था। अनुसंधान ही नहीं होने दिया गया। जबकि किसी मामले में आरोपी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बरकरार रखना और/या उसकी रक्षा करना न्यायालय का कर्तव्य होता है, लेकिन जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करती है, वहां उच्च न्यायालय को, आमतौर पर वैधानिक प्राधिकारी द्वारा इसके अनुसंधान में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था। पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा अनुसंधान आईपीसी की धारा 406 के

आरोप के हद तक सीमित हो सकता है। [पैरा संख्या 24 व 25] [448-बी, सी, डी]

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील की संख्या 621/2008

आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय, हैदराबाद के सीआरएल.पी. नं. 5126/2006 में पारित अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 27.12.2006 से उत्पन्न।

अपीलकर्ता की ओर से राकेश द्विवेदी, अन्नम डी.एन. राव, शांतनु कृष्णा, अमित सिंह और मुक्ति चौधरी

उत्तरदाताओं की और से सी.ए. सुंदरम, कल्याण राम कृष्ण, हरिकृष्ण, रोहिणी और सुब्रमण्यम प्रसाद।

न्यायालय का निर्णय जे. एस.बी. सिन्हा द्वारा सुनाया गया।

1. अनुमति दी गई।

2. यहां निजी पक्ष अपीलकर्ता कंपनी के निदेशक थे: वे निकट रूप से संबंधित थे। इसकी दो इकाइयाँ थीं। एक को महबूबनगर इकाई के नाम से जाना जाता था और दूसरा तिरुपुर में एक बिक्री डिपो था। कंपनी के प्रबंध निदेशक श्री एल.एन. अग्रवाल थे। वह हैदराबाद में तैनात थे। कथित तौर पर; एक ओर उनके बीच हुई बातचीत के अनुसार, और दूसरी ओर, श्री यू.के. अग्रवाल और रितेश कुमार अग्रवाल (अभियुक्त संख्या 2 और 3) के

बीच बातचीत के अनुसार, एक अभ्यावेदन दिया कि चैक प्राप्त करने की प्रक्रिया में प्रबंध निदेशक काफी समय ले रहे थे, ऐसे में यह उचित होगा कि महबूबनगर इकाई और तिरुपुर सेल्स डिपो के कुशल प्रबंधन के लिए हस्ताक्षरित खाली चैक आरोपी नंबर 2 और 3 के हाथों में छोड़ दिए जाएं।

3. उक्त अभ्यावेदन पर भरोसा करते हुए या उसके आधार पर, 2000 ई. से 2004 ई. की अवधि के दौरान उन्हें हस्ताक्षरित खाली चैक सौंपे गए। 2005 ई. में पार्टियों के बीच विवाद और मतभेद उत्पन्न हुए।

4. आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष एक कंपनी याचिका दायर की गई थी। पार्टियों द्वारा प्रस्तुत व्यवस्था के लिए एक योजना को मंजूरी दे दी गई, जिसके अनुसार महबूबनगर इकाई को राजवीर इंडस्ट्रीज लिमिटेड (अभियुक्त नंबर 1) के पक्ष में और महबूबनगर इकाई को श्री एल.एन. अग्रवाल. को हस्तांतरित कर दिया गया। उक्त उद्देश्य के लिए, इकाइयों को अलग कर दिया गया और प्रतिवादी संख्या 1 में निहित कर दिया गया। कथित तौर पर, उक्त योजना पूरी तरह से लागू की गई थी और प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने दिनांक 22.4.2005 को एक पत्र द्वारा कहा कि वे महबूबनगर इकाई के संबंध में कोई भुगतान की मांग नहीं करेंगे।

5. एल.एन. अग्रवाल ने कथित तौर पर अपीलकर्ता कंपनी के सचिव के रूप में अप्रयुक्त हस्ताक्षरित खाली चैक वापस करने के लिए आरोपी नंबर 2 और 3 से मौखिक अनुरोध किया था।

6. हालाँकि, कथित तौर पर इस आधार पर प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने उक्त चैक का दुरुपयोग करने की साजिश रची; एक अनौपचारिक शिकायत 20.10.2006 को दर्ज की गई थी और दूसरी शिकायत 30.10.2006 को महानकाली पुलिस स्टेशन में दर्ज की गई थी। उसमें इस बात का समर्थन किया गया कि उस स्तर पर पुलिस की कोई भूमिका नहीं थी।

7. इसके बाद उत्तरदाताओं ने दिनांक 1.10.2004 को एक पत्र और दिनांक 20.10.2004 को एक टेलीग्राम भी जारी किया, जिसमें कहा गया था कि प्रतिवादी नंबर 1 की संस्थागत देनदारी 13.25 करोड़ से अधिक हो गई थी, उक्त राशि का एक हिस्सा चुकाने की दृष्टि से, अपीलकर्ता द्वारा पहले प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में 6.28 करोड़ रुपये की राशि का चैक निकाला गया था, जो कि अंतर की राशि थी जो संग्रह के लिए जमा की गई थी। टेलीग्राम में कहा गया था;

> "मैं आपको सूचित करता हूं कि मेसर्स सूर्यलक्ष्मी कॉटन मिल्स लिमिटेड और मेसर्स राजवीर इंडस्ट्रीज लिमिटेड के डिमर्जर के बाद शेयर ट्रांसफर राशि के अंतर के लिए और हमारी व्यक्तिगत समझ के अनुसार शेयरों को मेरी और आपकी तरफ से ट्रांसफर कर दिया गया था। मेरे परिवार के शेयर धारकों की अंतर राशि के लिए आपने दो चैक जारी किए हैं, एक 3,39,12,086.00 रुपये की राशि के लिए

दिनांक 31.07.2006 का, चैक क्रमांक 444842 और दूसरा चैक क्रमांक 444841 दिनांक 31.07.2006 का 3,80,77,646.00 रुपये की राशि के लिए, दोनों चैक आंध्रा बैंक, तिरुपुर शाखा, तमिलनाडु पर लिखे गए थे। इसके बाद आपने मुझसे मौखिक रूप से इसे अक्टूबर, 2006 के तीसरे सप्ताह में प्रस्तुत करने का अनुरोध किया था। आपके निर्देशों के अनुसार मैंने उक्त चैक हमारे बैंक में संग्रह हेतु जमा कर दिये हैं। कृपया इसका सम्मान करें।"

8. उसके बाद अपीलकर्ता द्वारा पुलिस स्टेशन महानकाली, हैदराबाद के स्टेशन हाउस ऑफिसर के समक्ष एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ आरोप लगाया गया कि वर्ष 2001-2002 में जारी किए गए खाली हस्ताक्षरित चैक का धोखाधड़ी से उपयोग किया गया था।

9. इसके बाद एफ.आई.और. दर्ज कराने की मांग की गई।

10. पुलिस स्टेशन द्वारा उसके आधार पर शिकायत दर्ज करने से कथित तौर पर इनकार करने पर, अपीलकर्ता ने XI अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट, सिकंदराबाद की अदालत में एक शिकायत याचिका दायर की। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा जारी निर्देश के अनुसार, महानकाली पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी।

11. हालाँकि, पहले प्रतिवादी द्वारा अपीलकर्ता को तीन चैक नंबर 444840 दिनांक 31.7.2006 राशि 6.28 करोड़, चैक संख्या 444841 दिनांक 31.7.2006, राशि 3,80,77,646/- और चैक संख्या 444842 दिनांक 31.07.2006, राशि 3,39,12,086/- रुपये के अनादरण के संबंध में कानूनी नोटिस जारी किए गए थे।

12. 13.11.2006 को या उसके आसपास, उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया गया था। स्वीकृत रूप से दिनांक 06.12.2006 को, प्रथम प्रतिवादी द्वारा अपीलकर्ता और उसके अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक के खिलाफ परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 और 141 के तहत एक शिकायत याचिका दायर की गई थी। आक्षेपित निर्णय के कारण, उत्तरदाताओं द्वारा दायर उक्त निरस्तीकरण आवेदन को अनुमति दे दी गई।

13. उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने फैसले में न केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 406, 420, 463 के तहत अपराधों के लिए सामग्री पर विचार किया, बल्कि पार्टियों के बीच विवाद से संबंधित पृष्ठभूमि तथ्यों पर भी विचार किया। जिसमें यह सुनिश्चित कियाजा सके कि अपरध के तथ्यों की संतुष्टि हुई अथवा नहीं। यह माना गया कि उक्त शिकायत याचिका उस आधार पर दायर की गई थी जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश दिया गया था ताकि आरोपी को

परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत शिकायत याचिका दायर करने से रोका जा सके:

> ".....इसलिए, भले ही शिकायत में लगाए गए आरोपों को सच और सही माना जाए, इस स्तर पर, वे *प्रथम दृष्टया* धोखाधड़ी या आपराधिक न्यासभंग या जालसाजी का मामला नहीं बनाते हैं। इसलिए, वर्तमान याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही जारी रखना अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा कुछ नहीं है।"

14. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री राकेश द्विवेदी ने तर्क दिए कि उच्च न्यायालय ने इतनी प्रारंभिक अवस्था में प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने में एक स्पष्ट त्रुटि की है और सीऔरपीसी की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के मापदंडों की पूरी तरह से उपेक्षा की है। पार्टियों द्वारा एक-दूसरे के खिलाफ दिए गए नोटिस और डिमर्जर की योजना सहित विभिन्न दस्तावेजों के माध्यम से हमें यह आग्रह किया गया कि जिस उद्देश्य के लिए चैक जारी किए गए हैं, वह किसी भी दस्तावेज या डिमर्जर के विलेख द्वारा समर्थित नहीं है। प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय की ओर से जल्दबाजी की गई थी। यह तर्क दिया गया कि यह कानून नहीं है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत अपराध के गठन के उद्देश्य से, शिकायतकर्ता को मिथ्या व्यपदेशन करने में आरोपी के पश्चातवर्ती व्यवहार को आरोपी का आशय पता लगाने के उद्देश्य

से नहीं किया जा सकता हो। विशेष रूप से ऐसे मामले में, जहां सद्भावी विश्वास और आरोपी द्वारा दिए गए अभ्यावेदन पर खाली चैक जारी किए गए हों। मार्च, 2001 में डीमर्जर की योजना तैयार होने के बाद, यह प्रतिवादी का कर्तव्य था कि वह उन चैकों को वापित लौटाता जो कि भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के प्रावधानों के 'संपत्ति' थे, और फिर, यह तर्क दिया गया था, आपराधिक न्यासभंग का मामला बनाया जा सकता है। जिस उद्देश्य के लिए उसे सौंपा गया था, उसके अलावा अन्य उद्देश्यों के लिए गबन और/या उसका रूपांतरण, यह ही दिखाएगा कि उत्तरदाताओं ने आपराधिक न्यासभंग किया है।

यह सिद्धांत कि अनुबंध की शुरुआत के समय ही आरोपी का कोई बुरा आशय रहा होगा, केवल संविदात्मक दायित्वों पर लागू होगा, न कि वहां जहां कुछ मूल्यवान दस्तावेज सौंपे गए हों। किसी भी स्थिति में, उक्त सिद्धांत भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 463 के तहत किए गए अपराधों के संबंध में लागू नहीं होगा।

15. श्री सी.ए. दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील सुंदरम ने तर्क दिए कि;

(i) यह प्रश्न कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रथम सूचना रिपोर्ट को न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग माना जाना चाहिए या नहीं, इसमें शामिल सार्वजनिक नीति को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए, अर्थात् कोई डिफॉल्टर, जो एक राशि का वैध

भुगतान करने में विफल रहा और इस प्रकार उस संबंध में मुकदमा चलाया जा सकता है जिसके संबंध में चैक जारी किया गया था, वह एक शिकायत याचिका दायर कर सकता है जो परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत उसके खिलाफ दायर मामले में उसका बचाव होगा।

(ii) भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत अभियोजन केवल उस स्थिति में होगा, जब अनुबंध की शुरुआत से ही आरोपी की ओर से किसी आशय के अस्तित्व के संबंध में आरोप लगाया गया हो, उसके बाद नहीं।

(iii) उच्च न्यायालय के समक्ष दायर जवाबी हलफनामे में, यह आरोप लगाया गया है कि प्रतिवादी नंबर 1 कंपनी के कर्मचारियों ने खाली चैक भरा था जो शिकायत याचिका में दी गई कहानी कि प्रतिवादी संख्या 2 और 3 थे जिन्होंने ऐसा किया था और इसलिए, जालसाजी के लिए कोई आरोप तय नहीं किया जा सकता है, से बिल्कुल विपरीत तथा असंगत है।

(iv) इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि चैक वर्ष 2000 से 2004 के दौरान जारी किए गए थे, जब कथित तौर पर दोनों पक्ष उत्कृष्ट संबंध बनाए हुए थे और उनके बीच विवाद सितंबर, 2004 में ही उत्पन्न हुआ था, यह पूरी तरह से असंभव है कि समझौता ज्ञापन में खाली चैक सौंपने के संबंध में कोई खंड नहीं होगा और/या उसे वापस करने की कोई मांग नहीं की जाएगी।

16. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के पैरामीटर अब अच्छी तरह से तय हो गए हैं। यद्यपि यह व्यापक आयाम का है, फिर भी इसके प्रयोग में काफी सावधानी बरतनी पड़ती है। इस मामले में शामिल प्रसिद्ध विधिक सिद्धांतों को लागू करने की आवश्यकता है।

17. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किस आधार पर किया जाना चाहिए, यह विस्तृत रूप से बताना न तो संभव है और न ही व्यावहारिक है, लेकिन कुछ निर्णयों में इस संबंध में कुछ प्रयास किए गए हैं। उदाहरण के लिए इस न्यायालय का *हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल* [1992 सप्प (1) एससीसी 335), *जनता दल बनाम एच.एस. चौधरी और अन्य* [(1992) 4 एससीसी 305], *रूपन देयोल बजाज (श्रीमती) और अन्य बनाम कंवर पाल सिंह गिल और अन्य* [(1995) 6 एससीसी 194], *इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड और अन्य* [(2006) 6 एससीसी 736]।

भजन लाल (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया ;

> "(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही देखने मात्र से और पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईऔर के साथ संलग्न अन्य सामग्री, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो मजिस्ट्रेट के धारा 155(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के आदेश के अलावा पुलिस अधिकारियों धारा 156(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता में किए गए अनुसंधान को उचित ठहराया जा सकता है।

(3) जहां एफआईऔर या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां, एफआईऔर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध हैं, वहां मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी अनुसंधान की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के तहत माना गया है।

(5) जहां एफआईऔर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने विवेकहीन और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में कार्यवाही संस्थित और जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक है और/या जहां कोई संहिता या संबंधित अधिनियम में विशिष्ट प्रावधान है, जो कि पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।"

हम यह भी रिकॉर्ड पर रख सकते हैं कि आपराधिक कार्यवाही को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए, जब यह दुर्भावनापूर्ण या अन्यथा अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग पाया जाता है।

ऑल कार्गो मूवर्स (आई) प्रा. लिमिटेड एवं अन्य बनाम धनेश बदरमल जैन एवं अन्य [2007 (12) स्केल 391], में यह राय थी:

"हमारी राय है कि शिकायत याचिका में लगाए गए आरोप, भले ही पढ़ने मात्र से और पूरी तरह से सही माने जाएं, किसी अपराध का खुलासा नहीं करते हैं। उक्त उद्देश्य के लिए, यह न्यायालय न केवल स्वीकृत तथ्यों पर विचार कर

सकता है लेकिन मुकदमे में वादी-प्रतिवादी नंबर 1 के अभिवचनों पर गौर करना भी अनुमत है। नोटिस में अपीलकर्ताओं के खिलाफ कोई भी आरोप नहीं लगाया गया था। जो तर्क दिया गया वह वाहक और उनके एजेंट की लापरवाही और/या अनुबंध का उल्लंघन था। अनुबंध का उल्लंघन करना किसी प्रकार के अपराध का गठन नहीं करता है। उक्त उद्देश्य के लिए, शिकायत याचिका में आरोपों के लिए आवश्यक सामग्री का खुलासा करना होगा। जहां एक सिविल मुकदमा लंबित है और शिकायत याचिका सिविलि मुकदमा दायर करने के एक वर्ष बाद दायर की गई है, हम यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या उक्त आरोप प्रथम दृष्टया पार्टियों द्वारा आदान-प्रदान किए गए पत्राचार और अन्य स्वीकृत दस्तावेजों पर ध्यान नहीं दे सकते हैं। यह कहना एक बात है कि न्यायालय इस समय आरोपी के बचाव पर विचार नहीं करेगा, लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि इस न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए, स्वीकृत दस्तावेजों को देखना भी अस्वीकार्य है। जब आपराधिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण या अन्यथा न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग पाया जाता है तो आपराधिक कार्यवाही को प्रोत्साहित नहीं किया जाना

चाहिए। वरिष्ठ न्यायालयों को इस शक्ति का प्रयोग करते हुए न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी प्रयास करना चाहिए।"

18. आमतौर पर, किसी अभियुक्त का बचाव यद्यपि प्रशंसनीय प्रतीत होता है, लेकिन उक्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग के लिए उस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। फिर भी, उस स्तर पर उच्च न्यायालय आम तौर पर तथ्य के विवादित प्रश्न में विचार नहीं करेगा। हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि बेदाग चरित्र के दस्तावेजों पर यह पता लगाने के लिए किसी भी कीमत पर विचार नहीं किया जाना चाहिए कि क्या आपराधिक कार्यवाही जारी रखना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या शिकायत याचिका केवल आरोपी को परेशान करने के आरोप में मामला दर्ज किया गया है। हालाँकि हम इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं कि हालाँकि बड़ी संख्या में विवादों का निर्धारण सामान्यतः केवल सिविल अदालतों द्वारा किया जाना चाहिए, लेकिन आपराधिक मामले केवल अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दायर किए जाते हैं, अर्थात् आरोपी को शिकायतकर्ता को देय राशि का तुरंत भुगतान करने के लिए मजबूर करना। एक ओर, न्यायालयों को ऐसी प्रथा को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए; लेकिन, दूसरी ओर, उस कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर भी नहीं जाना चाहिए जो अन्यथा वास्तविक है। न्यायालय इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं कर सकते कि कुछ मामलों में, सिविल कार्यवाही और आपराधिक कार्यवाही दोनों ही चलने योग्य होंगी।

19. हालाँकि, उच्च न्यायालय ने इस मामले में पक्षों के बीच विवाद की पृष्ठभूमि सहित विभिन्न तथ्यों पर गौर किया। यह इस आधार पर आगे बढ़ा कि डिमर्जर योजना के मद्देनजर, अप्रयुक्त ब्लैंक चैक वापस पाने के लिए लंबे समय तक चुप रहने का अपीलकर्ता का आचरण कहानी बताता है। इसमें यह प्रश्न शामिल है कि क्या शिकायत याचिका केवल उत्तरदाताओं को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 या शिकायत याचिका के तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू करने के लिए उपलब्ध उपायों का सहारा लेने के लिए पहले से छूट देने के उद्देश्य से दायर की गई थी या शिकायत याचिका वास्तव में और सार को केवल बचाव के माध्यम से पेश करने हेतु अनुमति दी जानी चाहिए। जो बात उच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने में विफल रही वह यह थी कि वर्तमान की तरह एक आपराधिक कार्यवाही के संधारण की केवल परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 139 के संदर्भ में उपधारणा पर निर्धारित नहीं की जानी चाहिए, जो कि खण्डन योग्य उपधारणा है।

20. उच्च न्यायालय को, हमारी राय में, इस तथ्य पर भी ध्यान देना चाहिए था कि यदि आपराधिक मामले में अपीलकर्ता का बचाव स्वीकार कर लिया जाता है, तो उसके पास उत्तरदाताओं पर फिर से मुकदमा चलाने का कोई उपचार नहीं होगा। यह तर्क देना कि अपीलकर्ता को बरी करना शिकायत दर्ज करने का आधार होगा, सही नहीं होगा। कोई नहीं जानता कि आपराधिक मामला कब ख़त्म होगा. किसी भी स्थिति में,

यह परिसीमा काल द्वारा वर्जित भी हो सकता है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि व्यावसायिक आवश्यकताएं किसी व्यक्ति को खाली चैक जारी करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं। उपरोक्त स्थिति में, हमारी राय में, कार्रवाई का तरीका, जिसका सहारा लिया जा सकता था, यह पता लगाने का प्रयास करना था कि क्या शिकायत याचिका, देखने मात्र से और पूरी तरह से सही मानी गई हो, एक अपराध का गठन धारा 420, 406, 463 भारतीय दंड संहिता के तहत करती है या नहीं.

21. छल के आवश्यक तत्व इस प्रकार हैं:

जो कोई किसी व्यक्ति से प्रवंचना कर उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित करता है कि वह कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त कर दे, या यह सम्मति दे दे कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को रख रखे या साशय उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार प्रबंचित किया गया है, उत्प्रेरित करता है कि वह ऐसा कोई कार्य करे, या करने का लोप करे जिसे वह यदि उसे हर प्रकार प्रबंचित न किया गया होता तो, न करता, या करने का लोप न करता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, ख्याति संबंधी या सांपत्तिक नुकसान या अपहानि कारित होती है, या कारित होनी संभाव्य है, वह "छल" करता है, यह कहा जाता है।

स्पष्टीकरण - तथ्यों का बेईमानी से छिपाना इस धारा के अंतर्गत प्रवंचना है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 415 व सपठितध धारा 420 का अवलोकन स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि आरोपी की ओर से धोखाधड़ी या बेईमानी का प्रलोभन शुरुआत में होना चाहिए, न कि बाद के चरण में।

22. उक्त उद्देश्य के लिए, हम केवल यह देख सकते हैं कि व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करने के लिए 2000-2004 की अवधि के दौरान अभियुक्तों को खाली चैक सौंपे गए थे, लेकिन पार्टियों के बीच विवाद इसके बहुत बाद यानी 2005 में उत्पन्न हुआ।

बी.सुरेश यादव बनाम शरीफ़ा बी [2007 (12) स्केल 364], में यह माना गया था;

> "13. धोखाधड़ी के अपराध को स्थापित करने के उद्देश्य से, शिकायतकर्ता को यह दिखाना आवश्यक है कि वचन या व्यपदेशन करते समय अभियुक्त का कपटपूर्वक या बेईमानी का आशय था। इस प्रकृति के मामले में, किसी लंबित सिविल मुकदमे में किसी पक्ष द्वारा लिया गया रुख पर विचार करना कानून अनुमत है। हालाँकि, हमारा ऐसा कानून बनाने का इरादा नहीं है कि किसी व्यक्ति का दायित्व एक ही समय में सिविल और आपराधिक दोनों नहीं हो सकता है। लेकिन जब किसी शिकायत याचिका में कोई रुख अपनाया गया हो जो किसी सिविल मुकदमे में उनके द्वारा

उठाए गए रुख के विपरीत या असंगत है, वह महत्वपूर्ण हो जाती है। यदि यह तथ्य हमारे समक्ष प्रस्तुत किया होता कि अपीलकर्ता ने उक्त दो कमरों को ध्वस्त करवा दिया और उक्त तथ्य को विक्रय विलेख के निष्पादन के समय छुपाया, तो मामला अलग हो सकता था। चूंकि विक्रय विलेख 30.9.2005 को निष्पादित किया गया था और कथित विध्वंस 29.9.2005 को हुआ था, यह उम्मीद थी कि शिकायतकर्ता/प्रथम प्रतिवादी उसके द्वारा वाद में अपने लिखित कथन में वास्तविक शिकायत को लाते। उसने, उन्हीं कारणों से, जो उसे सबसे अच्छे से ज्ञात हैं, ऐसा करने का विकल्प नहीं चुना।"

इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत प्रतिवादी के खिलाफ कार्यवाही करने का कोई मामला नहीं बनता है।

23. चैक में रिक्त स्थान स्वयं भरना जालसाजी नहीं माना जाएगा। जबकि शिकायत याचिका में जैसा कि यह बताया गया है, आरोप लगाया गया है कि यह प्रतिवादी नंबर 2 और 3 थे जिन्होंने उक्त अपराध करने की साजिश में रची थी परंतु जवाबी हलफनामे में यह आरोप लगाया गया है कि प्रतिवादी कंपनी के कर्मचारी ने ऐसा किया।

हालाँकि, संहिता की धारा 120बी जोड़ी गई है, लेकिन ऐसा कोई कथन मौजूद नहीं है कि प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने अपने कर्मचारियों के

साथ कोई साजिश रची हो। इस प्रकार, उत्तरदाताओं के खिलाफ जालसाजी के अपराध में आगामी कार्यवाही का कोई मामला भी नहीं बनाया गया है।

24. हालाँकि, हमारी राय में, धारा 406 के तहत उत्तरदाताओं के खिलाफ कार्यवाही करने का आधार पाया गया है। एक चैक एक संपत्ति है, जिसे उत्तरदाताओं को सौंप दिया गया था। यदि उक्त संपत्ति का दुरुपयोग किया गया है या उस उद्देश्य के लिए उपयोग किया गया है जिसके लिए उसे सौंपा नहीं गया था, तो धारा 406 के तहत मामला बनाया जा सकता है। यह सच हो सकता है कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत कार्यवाही में भी, अपीलकर्ता यह बचाव कर सकता है कि चैक का उपयोग किसी वैध दायित्व या ऋण के निर्वहन के लिए नहीं किया गया था, हमारी राय का मतलब यह नहीं होगा कि किसी उचित मामले में शिकायत याचिका दायर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

हम इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं कर सकते कि उत्तरदाता इस मामले पर नजर रख रहे थे। जैसे ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज हुई, तुरंत नोटिस भेजा गया. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के कुछ दिनों के भीतर रद्दीकरण आवेदन दायर किया गया था। अनुसंधान ही नहीं होने दिया गया। जबकि किसी मामले में अभियुक्त की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कायम रखना और/या उसकी रक्षा करना न्यायालय का कर्तव्य होता; लेकिन जहां पहली सूचना रिपोर्ट प्रथम दृष्टया किसी संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करती है, तो उच्च न्यायालय, आमतौर पर, वैधानिक प्राधिकारी द्वारा उसकी

अनुसंधान में हस्तक्षेप नहीं करेगा। इसलिए, हम अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हैं।

25. महंकाली पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा अनुसंधान अब भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के तहत आरोप तक सीमित हो सकती है।

26. हम आशा और विश्वास करते हैं कि अनुसंधान पूरा हो जाएगा और संबंधित अदालत के समक्ष शीघ्र अंतिम रिपोर्ट दायर की जाएगी। यदि कोई आरोप पत्र दायर किया जाता है और अपराध का संज्ञान लिया जाता है, तो दोनों मामलों की सुनवाई एक ही अदालत द्वारा एक के बाद एक की जानी चाहिए, और दोनों मामलों में फैसला एक ही समय पर सुनाया जाना चाहिए।

27. यह अपील उपरोक्त सीमा तक और उपरोक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ स्वीकार की जाती है।

एन.जे.

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी रेणू सिंगला (और.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।